Issue-12; Vol.01, Sept. 2021 Impact Factor: 6.003 (I2OR)
ISSN–2231-1130
VEETHIKA

समकालीन महिला लेखिकाओं के उपन्यासों में नारी संघर्ष

कृष्ण चन्द्र
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
बीएस0एन0वी0पी0जी0कालेज,चारबाग, लखनऊ

शोध–सार

सामाजिक संदर्भ में मनुष्य एवं साहित्य का संबंध अत्यंत व्यापक है। इसमें स्त्री केन्द्रबिन्दु है, वह जन्मदात्री है, सृष्टि को गति देने का कार्य करती है। प्राचीनकाल में अपाला, घोषा, लोपामुद्रा, तारा, गार्गी, मैत्रेयी, अनुसूया जैसी तेजस्वी स्त्रियों का उल्लेख मिलता है। हजारों वर्षों तक उनके साथ पशुवत् व्यवहार किया गया। देश–दुनिया के फलक पर कई महत्वपूर्ण सुविधाओं की आड़ में स्त्री शोषण का नया रूप सामने आया है। स्त्री व साहित्य विमर्श की जब पड़ताल की जाती है तो ऐसा प्रतीत होता है कि नारी का अस्तित्व अनादि काल से संघर्ष एवं समर्पण के बीच झूलता रहता है। स्वाधीनता के बाद उनकी सामाजिक एवं पारिवारिक स्थिति में बदलाव आना शुरू हुआ। इसी के साथ नारी का अपना संघर्ष बढ़ा भी है। 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक नारी पुरूष मुख से बोलती थी, 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से नारी ने समाज के अनेक क्षेत्रों में पहचान बनानी शुरू की। पुरूष के कातर अंह के कारण नारी की स्थिति आज भी सुदृढ़ नहीं बन पायी है। समकालीन हिन्दी महिला लेखिकाओं विशेषकर कृष्णा सोवती, मन्नू मण्डारी, उषा प्रियंवदा, प्रभा खेतान, मैत्रयी पुष्पा, चित्रा मुद्गल ने अपनी रचनाओं में स्त्री संघर्ष को चित्रित किया है।

***मुख्य शब्दः*–*पितृसत्तात्मक, दोहरा मापदण्ड, अस्मिता, पूंजीवादी व्यवस्था, उपभोक्ता मूलक संस्कृति।*

हिन्दी साहित्य में चर्चा करते समय सर्वप्रथम जिस तेजस्वी व्यक्तित्व का नाम आता है, वह है 'मीरा'। जिन्होंने मध्यकालीन सामंती पितृसत्तात्मक समाज के विरूद्ध विद्रोह किया तथा अपने समय तथा समाज को व्यापक रूप से प्रभावित किया। मीरा ने स्त्री के प्रति समाज को नयी दृष्टि दी। मीरा के बाद दो महत्वपूर्ण नाम सामने आते हैं वे हैं – करूणा की मूर्ति महादेवी वर्मा व सुभद्रा कुमारी चौहान। महादेवी ने जहाँ एक तरफ पितृसत्तात्मक समाज को चित्रित किया है वहीं सुभद्रा कुमारी चौहान ने स्त्री को गरिमा एवं उदात्तता प्रदान की। आधुनिक काल की महिला उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में स्त्री संघर्ष को अनेक रूपों में चित्रित किया है।

जिस समाज में 'यत्र नार्यन्तु पूज्यन्ते, रमते तत्र देवता' की परिकल्पना रही हो और आज 'मिशन शक्ति' जैसे कार्यक्रमों को चलाने की आवश्यकता पड़ रही हो तो उस समाज की ह्रासोन्मुखी प्रवृत्ति को समझा जा सकता है। भारतीय स्त्री समाज जा सकता है। भारतीय स्त्री जन्म से ही पक्षपात का शिकार होना शुरू हो जाती है। हमारे समाज में यह मानसिकता है कि कन्या पराया धन होती है। अतः अधिकांश माता–पिता उनकी उचित शिक्षा का प्रबन्ध नहीं करते हैं, जिसके कारण आज स्कूल छोड़ने वाले बच्चों में ज्यादा संख्या में लड़कियाँ होती हैं। उनका बचपन माता–पिता के द्वारा नियंत्रित होता है, युवावस्था पति के द्वारा एवं वृद्धावस्था पुत्र के द्वारा।

भारतीय समाज में नारी के प्रति दोहरा मानदण्ड अपनाया जाता है। उसकी अस्मिता पर प्रश्नचिह्न खड़ा किया जाता है। सबसे बड़ी चिंता विवाह की होती है। महादेवी वर्मा 'श्रृंखला की कड़ियाँ' में लिखती है – "जैसे ही कन्या का जन्म हुआ, माता–पिता का ध्यान सबसे पहले उसके विवाह की कठिनाइयों की तरफ गया। वह रोगी माता–पिता से पैत्रिक धन की तरह कोई रोग ले आयी तो भी उसके जन्मदाता अपने दुष्कर्म के उस कटुफल को परायी धरोहर

कह–कहकर किसी को सौंपने के लिए व्याकुल होने लगें।" विवाह के पश्चात् वह तलाक की समस्या से झूँझती है। शिक्षित होकर नारी जागरूक एवं सचेत हुई है। यौन सम्बन्धों में वह पहले की अपेक्षा वह मुखर हुई है। नारी की इन समस्याओं को समकालीन महिला रचनाकारों ने अपने उपन्यासों में प्रमुखता से उठाया है और नारी के संघर्ष को नये धरातल पर खड़ा किया है।

स्त्री महत्वपूर्ण इकाई है। वह अपनी इच्छापूर्ति एवं लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए निरंतर संघर्षरत् है। प्रकृति ने नारी एवं पुरूष दोनों को एक ही तरह बनाया है, भूख चाहे पुरूष या स्त्री या थर्ड जेंडर सबको लगती है। प्यास से गला प्रत्येक व्यक्ति का सूखता है। सुख–दुःख, राग–द्वेष, हंसी व रूदन का अनुभव तो लगभग सभी लोग करते हैं, इसे हमने गढ़ा है। कुछ पुरूष अपने अहंकार के वशीभूत होकर नारी को शारीरिक एवं मानसिक कष्ट देते हैं। एक सीमा के बाद स्त्री का धैर्य जवाब दे देता है, वह विरोध का मार्ग अपनाती है, नारी का यहीं विरोध उसका संघर्ष है। दिनेश नंदनी डालमिया लिखती है–
"नारी तो जीते जी पल–पल जलती रहती है, कभी त्याग के नाम पर, कभी धर्म के नाम पर और कभी कर्त्तव्य के नाम पर। लेकिन स्त्री जलती है तो केवल गीली लकड़ी की तरह, जब भी जलेगी, धुँआ देगी।

स्त्री का जलना, धुँआ देना उसके संघर्ष का द्योतक है। नारी जितना शोषित होगी, उतने ही आवेग के साथ संघर्ष के लिए तत्पर ही होगी।

कृष्णा सोवती ने सातवें दशक में ही 'मित्रो–मरजानी' के माध्यम से प्राचीन रूढ़ियों एवं परम्पराओं का खुलकर विरोध किया था स्त्री को संघर्ष के लिए प्रेरित किया। कृष्णा सोवती जी ने अपने एक अन्य उपन्यास 'सूरजमुखी अंधेरे के' में नारी जीवन की मनौवैज्ञानिक समस्या को चित्रित किया है। 'रत्ती' नामक युवती बचपन में बलात्कृत होती है, जिससे वह असहिष्णु एवं क्रूर हो जाती है। अंत में दिवाकर के सम्पर्क में आने पर वह काम विकृति से मुक्ति पाती है। इस उपन्यास में लीग से अलग हटकर कृष्णा सोवती जी ने साहसिक कदम उठाया है।

नारी का सबसे संघर्ष उसकी देह का संघर्ष है। पुरूष स्त्री की देह को अपनी व्यक्तिगत् सम्पत्ति समझता है। वह अपने शरीर पर अधिकार समझता ही है, साथ ही स्त्री के शरीर को भी अपना ही मानता है। महाभारतकाल में द्रौपदी को युधिष्ठिर ने अपनी सम्पत्ति समझकर दांव पर लगाया था। कृष्णा अग्निहोत्री के उपन्यास 'नीलोफर' में नवींन का पति उसकी दलाली करता है और जौहरी साहब को खुलकर उससे वासनापूर्ति करने देता है।[3] पति प्रवीन को वह फटकारती है, उसे ठीक से आचरण करने को विवश कर देती है। प्रत्येक कदम पर नारी अपनी शारीरिक सुरक्षा को लेकर संघर्षरत् है।

मैत्रेयी पुष्पा के लेखन का केन्द्रीय बिन्दु स्त्री एवं उसकी दयनीय स्थिति है। मैत्रेयी का यह लेखन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह केवल समस्याओं की ओर ही ध्यान नहीं दिलाती है अपितु उसका उचित समाधान भी चाहती है। 'चाक' के रेशम की मानसिक स्थिति का चित्रण करते हुए लिखित है– "रेशम विधवा थी, जमाने के लिए रीति–रिवाजों के लिए शास्त्र–पुराणों के चलते घर एवं गांव के लिए विधवा सिर्फ विधवा होती है और वह औरत नहीं रहती है फिर यह बात पता नहीं उसे किसी ने समझाई की नहीं?...... ऐसा हो सकता है कि ऋतु आये और बल्लरी लता फूले नहीं?
औरत ऋतुमती हो और आग दहके नहीं?[4] स्त्री संघर्षों को चित्रित करते समय मैत्रेयी पुष्पा जी की कलम में पता नहीं कहाँ से इतना तेज आ जाता है कि हर तरफ के शोषण, मर्यादा को तोड़ते हुए स्त्री पर पुरूष के वर्चस्व एवं स्वामित्व के खिलाफ शंखनाद करती है। 'चाक' उपन्यास में रेशम भी अपनी मर्यादा से ऊपर उठकर अपनी देह की आवाज सुनती है और पाँच माह बाद गर्भवती हो जाती है जो संघर्ष का प्रतीक है, वह उपन्यास की सारंग भेड़ चाल से अलग एक व्यक्तित्व है जो गलत को गलत एवं सही को सही न सिर्फ कहती है बल्कि जरूरत पड़ने पर अपने आत्म–सम्मान एवं गृहस्थी को दांव पर

लगाकर उसके लिए लड़ती भी है। वह श्रीधर से कहती है "तुम जिंदगी जी रहे हो, मेरे लिए जिंदगी और मौत बराबर हो गयी है, उन्हें बेदाग रहने की लालसा है और मैं दागदार जीवन से डरती नहीं।"

उषा प्रियंवदा ने अपने उपन्यास 'पचपन खंभे लाल दीवारें' में सुषमा एक मध्यमवर्गी युवती के मानसिक संघर्ष का चित्रण किया गया है। वह अपने माता–पिता की कमाऊँ बेटी है। माता–पिता व्यक्तिगत् स्वार्थ को लेकर बेट के जवान होने तक उसके विवाह की उपेक्षा करते है।[6] वह संघर्ष एवं संदेह के बीच झूलती रहती है।

स्वतंत्रता के पूर्व हमारे समाज में नारी अत्यंत उपेक्षित थी। सामाजिक नियंत्रण उसके ऊपर हावी था। घर की चारदीवारी ही उसकी दुनिया थी। अल्का सरावगी 'कलिकथा': 'वाया बाईपास' में लिखती है – "उस समय की नारियाँ सारे दिन घर में बंद रहती हैं, कभी बाहर निकलना हुआ तो जरीदार भारी ओढ़नी ओढ़कर, गर्दन तक घुंघट डालकर। अमोलक कहता है कि हाथरस में उसके ननिहाल में मकानों की छतें एक दूसरे से सटी हुई हैं, वहाँ औरत को एक घर से दूसरे घर तक जाने के लिए ओढ़नी नहीं लेनी पड़ती।

वे छत ही छत से दूर तक कई घरों में आ–जा सकती हैं, उनकी छतें ही उनकी सड़के हैं, उन्हें नीचे से कोई मकान मंगवाना होता है तो वे ऊपर एक तल्ले से साड़ी लटकार नीचे दुकानदार को आवाज दे देती हैं।"

पितृसत्तात्मक समाज की बहुत बड़ी कमजोरी है कि पुरूष स्त्री को समाज में आगे नहीं आने देना चाहता है, उसके लिए अनेक प्रकार के शोषण एवं हथकंडे अपनाता है लेकिन नारी इन अवरोधों को पार करके अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष करती है। मृदुला गर्ग के उपन्यास 'मैं एवम् मैं' का कौशल कुमार माधवी के हर काम में बाधा उत्पन्न करने की कोशिश करता है। पुस्तक के प्रकाशन में वह अनेक तर्क प्रस्तुत करता है, "क्या करें, इस पूंजीपति व्यवस्था में बिचौलियों की रोटी चले बिना कुछ नहीं हो सकता।"

मैं एवम् मैं एक ऐसी स्त्री अस्मिता की खोज की कथा है जो स्त्री के साथ–साथ कथा लेखिका भी है। इस उपन्यास में प्रश्न में कौशल झूठ एवं छद्म का सहारा लेकर माधवी का इस्तेमाल करता था, ठीक उसी तरह माधवी भी उसके साथ उसी तरह का व्यवहार करने लगी। यह आधुनिक काल की स्त्री का संघर्ष है, जिसमें वह कहती है, "जिस तरह का व्यवहार तुम हमारे साथ करोगे, ठीक वैसा ही व्यवहार मैं तुम्हारे साथ भी करूँगी।"[8]मधुरेश के शब्दों में 'मैं स्वयं मैं' में एक मैं माधवी का है और एक कौशल का। कौशल के द्वारा बुनी पर्तों को झाड़कर वह जैसे स्वयं को नये सिरे से अन्वेषित करती है।"

आज की व्यवसाय केन्द्रीत एवं उपभोग संस्कृति स्त्री शोषण के नये–नये रूप सामने आने लगे हैं। चित्रा मुद्गल के 'एक जमीन अपनी' विज्ञापन जगत को आधार बनाकर लिखा पहला उपन्यास है। इस उपन्यास के बारे में चित्रा मुद्गल लिखती है– "विज्ञापन जगत बड़े कौशलसे आधुनिकता बोध की आड़ में आधुनिक जीवन शैली के प्रलोभनों को परोस उसे शार्टकट के रास्ते सिखा 'देह' की संज्ञा से मुक्ति देने के बजाए उसे पुनः 'देह' की परिभाषा में कैद कर रहा है। उपयोग एवं उपभोग की सोची–समझी राजनीति से बेखबर आधी आबादी अपने विरूद्ध रची जा रही, इस चौंधियाहट–भरी आवाज में स्वयं फंसती जा रही है। वस्तु का विज्ञापन करती हुई स्वयं वस्तु में तब्दील होती है। 'एक जमीन अपनी' उपन्यास की नायिका पुरूष के अहं एवं शोषक नीतियों से बारम्बार टकराती है। सिर्फ शरीर मात्र बनने का विरोध करती है जोकि नारी संसघर्ष का एक तेजस्वी रूप है। अंकिता का पति उसे बिल्कुल निम्न स्तर का मानता है– "तुम मामूली औरत क्या है तुझमें? सिवा तराशी देह के? और सिर्फ तराशे शरीर के साथ नहीं रह सकता, पुरूष को इसके आगे भी कुछ चाहिए होता है। महज शरीर पाने के लिए उसे घर में औरत पालने की जरूरत नहीं होती है।" सुधांशु एवं अंकिता के टूटे रिश्ते को जब लोग पुनः जोड़ने का प्रयास करते है तो उसकी प्रतिक्रिया नारी संघर्ष के रूप सामने आती है। – "सुधांशु

जी औरत बोनसाई का पौधा नहीं है. जब भी चाहा उसकी जड़े काटकर उसे वापस गमले में रोप लिया। वह बौना बनाये रखने की इस साजिश को अस्वीकार भी तो कर सकती है।"

अधिकांश स्त्रियाँ आर्थिक दृष्टि से पुरूष पर आश्रित हैं। लेनिन ने आर्थिक परितंत्रता को स्त्री के पिछड़ेपन का कारण मानते हुए कहा है कि जब तक आर्थिक रूप से स्त्री स्वतंत्र नहीं होगी तब तक पुरूष के समान स्वतंत्रता की कल्पना मिथ्या है। जब स्त्री अर्थ अर्जित करने हेतु बाहर निकलती है तो अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है, कार्यालयों में अनेक प्रकार के शोषण उनके साथ होता है। कुछ मामलों में उनकी सहमति भी होती है, कुछ में उनकी विवशता। प्रोफेसर मोहिनी टाया "पुरूष अधिकारी द्वारा कामकाजी महिला का शोषण तभी संभव है जब स्वयं महिला इसमें शामिल हो।" निरूपमा सोवती के उपन्यास 'पतझड़ की आवाजें' की ऊषा अपने उच्चाधिकारी के शोषण का शिकार होती है। "ऊषा भी अपने कामलोलुप ऑफिसर की यौन क्षुधा को अपनी नौकरी का हिस्सा समझकर तृप्त करती है।" चित्रा मुद्गल के उपन्यास 'आवां' की पात्र नमिता अन्ना साहब के द्वारा किये गये कुकृत्य (हस्थमैथुन) पर तुरंत अघाड़ी कार्यालय जाना छोड़ देती है। अपने घर जाकर बाबू की पंजर छाती पर अपना सिर टिकाकर उनसे कहती है– "बाबू जी! अगर मैं बिना कारण बताए आपसे कह दूँ कि कल सुबह से मैं कामगार कार्यालय अघाड़ी की नौकरी नहीं करने जा रही हूँ जो आप समझ जायेंगे न, मैं ऐसा क्यों कह रही हूँ? गैर जिम्मेदार मैं नहीं हूँ, बाबू जी!"

ऊषा प्रियंवदा ने अपने उपन्यास 'पचपन खंभें लाल दीवारें' में नायिका सुषमा की मानसिक यंत्रणा का चित्रण किया है। सुषमा एक प्राईवेट कालेज में अध्यापन का कार्य करती है। कालेज का सचिव उसका शारीरिक शोषण करता है किन्तु वह उनकी कुदृष्टि को भांप लेती है, वह त्याग–पत्र देना स्वीकार करती है किन्तु सचिव के अनुचित आग्रह को स्वीकार नहीं करती।

आज की शिक्षिका एवं अधिकार सम्पन्न नारी लैंगिक भेदभाव का खुलकर विरोध करती है। वह उन सभी सुविधाओं को प्राप्त करना चाहती है जो पुरूषों को मिले हुए हैं, इसके लिए भले ही माता–पिता से विद्रोह करना पड़े। अपनी अस्मिता की रक्षा करने के लिए वह प्रत्येक संघर्ष का भागीदार बनना चाहती है।

मालती जोशी के उपन्यास 'पाषाण युग' की नीरू नारी के पारिवारिक संघर्ष का जीता–जागता उदाहरण है। वह विधवा है किन्तु कहीं से निराश नहीं है, वह कहती है – "मेरी चिंता मत कर, मेरे पास इतनी यादें हैं कि ऐसी–ऐसी दो–दो जिंदगियाँ बर्बाद हो सकती है।"

प्रभा खेतना के उपन्यास 'छिन्नमस्ता' में प्रिया ऐसी नारी के जीवन संघर्ष को चित्रित किया गया है जो पितृसत्तात्मक समाज में पितृसत्ता के विरूद्ध एक नयी पहचान एवं जमीन तैयार करना चाहती है, चाहे अर्थ हो अथवा देह दोनों स्थलों पर पुरूषों ने सदैव नारी का शोषण किया है। नायिका इन दोनों स्तरों पर मुक्ति चाहती है। बचपन में ही बालत्कृत होने पर विद्रोही बन जाती है। परिवार के अधिकांश लोग उसके साथ दुर्व्यव्हार करते है।

'पीली आंधी' में प्रभा खेतान में स्त्री के अनेक रूपों एवं उनके संघर्षो को रूपायित किया है। विवाहेत्तर प्रेम प्रसंग के साथ नारी के मानसिक शोषण एवं उसके संघर्ष का चित्रण है। विवाहेत्तर प्रेम प्रसंगों को स्वीकार करने का साहस प्रभा खेतान की रचना 'पीली आंधी' को अन्य से अलग बनाता है। 'पीली आंधी' की प्रमुख पात्र सोमा सेन से प्रेम करती है क्योंकि गौतम उसे बच्चा नहीं दे सकता। पति से पूछने पर कहती है – "क्या यह एक गलती थी?"

क्षणों का उन्माद था,
मैं 'हाँ' और 'न' में उत्तर चाहता हूँ,
नहीं,
'यानी'
मैंने जानबूझकर सब कुछ किया है,
तुम उस बंगाली प्रोफेसर से प्यार करती हो,
'हाँ

पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रियाँ पति द्वारा शारीरिक यातना दिये जाने पर पति के नाजायज सम्बन्धों को स्वीकार कर लेती है, वहीं 'पीली आंधी' की चित्रा पति की गर्भवती महिला से लड़ जाती है। 'पीली आंधी' उपन्यास की सोमा अपनी प्रतिभा एवं दृढ़ निश्चय से नयी शक्ति एवं चुनौती के रूप में उभरती है।

आज हमारे समाज में बच्चियों के साथ बलात्कार की घटनायें अप्रत्याशित रूप से बढ़ रही हैं। विगत् वर्षों को दिल को दहलाने वाली बलात्कार की घटनाएं हुई हैं। सोशल मीडिया एवं प्रिंट मीडिया एवं इलेक्ट्रानिक मीडिया की सतर्कता की वजह से ऐसी घटनाएं अब प्रकाश में जल्द ही आ जाती है। बालत्कारी साक्षियों को मिटाने के लिए बलात्कार पीड़िता की हत्या भी कर देते हैं और जो पीड़िता जीवित रह जाती है, उन्हें हमारा समाज जीने नहीं देता।

पितृसत्तात्मक समाज में बलात्कारी को नहीं, बलात्कृत के चरित्र को लोग संदेह की दृष्टि से देखते है। हिन्दी की महिला उपन्यासकारों ने अपने–अपने उपन्यासों में नारी के इस संघर्ष को बखूबी चित्रित किया है। चित्रा मुद्गल के उपन्यास 'आवां' की पात्र दस वर्ष की अवस्था में अपने मौसा से बलात्कार का शिकार होती है, उसके बाद मौसा का यह निर्देश कि "अच्छा से वह मुँह सिये रहे–सभी लड़कियों के संग यहीं होता है, बस किसी को किसी के विषय में भनक नहीं लगती।"[18] यहीं नहीं उसकी माँ भी उसे यहीं आदेश देती है कि – "जो हुआ सो पेट में डाल।"[19] स्त्री वह चाहे किसी वर्ग या समुदाय की क्यों न हो, शारीरिक एवं मानसिक रूप से प्रताड़ित होती रहती है।

समकालीन हिन्दी कथा साहित्य को समृद्ध करने में महिला उपन्यासकारों की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका रही है। एक तरफ महिला उपन्यासकारों ने नारी के हर क्षेत्र के संघर्ष को चित्रित किया तो दूसरी तरफ उन संघर्षों के सुखद परिणामों की ओर अपना ध्यान आकृष्ट किया है। सदियों से शोषित, पीड़ित नारी के संघर्ष यात्रा को जारी रखने का प्रयास किया। स्त्री उपन्यासकारों ने बाजारवाद के दुष्प्रभाव को रेखांकित किया, साथ ही उसके मकड़जाल से सजग भी किया। उपभोक्तावादी संस्कृति में 'वस्तु' बन रही स्त्री ने अपने अंदर निर्णय लेने क्षमता को विकसित किया है। प्राचीन काल उन सभी दांवों को झुठलाते हुए जो स्त्री को पुरूष से हीन सिद्ध करते थे, स्त्री–पुरूष से कंधे से कंधा मिलाकर चलने को तत्पर है।

संदर्भ सूचीः–

1. वर्मा महादेवी 2004, श्रृंखला की कड़ियाँ, पृ0सं0 77, लोक भारती प्रकाशन, चतुर्थ संस्करण, इलाहाबाद
2. डालमिया, दिनेश नंदनी 1996, यह भी झूठ है, पृ0सं0 07, राधाकृष्ण प्रकाशन
3. अग्निहोत्री, कृष्णा 2013, नीलोफर, पृ0सं0 192, सामयिक प्रकाशन
4. पुष्पा, मैत्रयी 1997, चाक, पृ0सं0 18, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण
5. पुष्पा, मैत्रयी 1997, चाक, पृ0सं0 185, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण
6. प्रियंवदा, उषा 1990, पचपन खंभे लाल दीवारें, पृ0सं0 06, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पंचम् संस्करण
7. सरावगी, अल्का 1998, कलिकथा–वाया बाईपास, पृ0सं0 70, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण
8. गर्ग, मृदुला 1984, मैं एवम् मैं, पृ0सं0 67, 68, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण
9. मधुरेश जनवरी–मार्च 1985, आजकल, पृ0सं0 78, अंक 72
10. मुद्गल, चित्रा, मेरे साक्षात्कार, पृ0सं0 39, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण
11. मुद्गल, चित्रा 1990, एक जमीन अपनी, पृ0सं0 23, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण
12. मुद्गल, चित्रा 1990, एक जमीन अपनी, पृ0सं0 235, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण
13. टाया, मोहिनी, कामकाजी महिला, पृ0सं0 207, प्रथम संस्करण
14. सोवती, निरूपमा 1976, पतझड़ की आवाजें, पृ0सं0 132–33,
15. मुद्गल, चित्रा 1999, आवां, पृ0सं0 143, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण
16. जोशी, मालती, पाषाण युग, पृ0सं0 194
17. खेतान, प्रभा 1996, पीली आंधी, पृ0सं0 246, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, नई दिल्ली
18. मुद्गल, चित्रा 1999, आवां, पृ0सं0 302–303, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण